ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 169-175

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

प्राचीन भारतीय युद्ध –कला (प्रारम्भ से लेकर मौर्यकाल तक)

डॉ0 श्याम बिहारी श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर– रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन, अमर नाथ मिश्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दूबे छपरा–बलिया (उ0प्र0) भारत

Received-03.02.2023, Revised-08.02.2023, Accepted-13.02.2023 E-mail: perfactprints16@gmail.com

सारांशः ***सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में इतिहास का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी देश या राज्य के इतिहास के अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वहाँ अनेक ऐतिहासिक परिवर्तनों का मूल कारण युद्ध रहा है। अतः किसी देश विशेष की युद्ध–कला और सैनिक–व्यवस्था को समझने के लिए वहां के सामान्य इतिहास का अध्ययन आवश्यक है। ऐतिहासिक जानकारी के लिए लिखित सामग्रियों के अलावा विभिन्न सूत्रों की सहायता लेनी पड़ती है, विशेषकर प्राचीन भारतीय युद्ध–कला की जानकारी के लिए पत्थर एवं ताम्रपत्र पर खुदें अभिलेख, सिक्कें, औंजार आदि प्रमुख साधन हैं। पुराने समय की सैन्य–व्यवस्था और युद्ध–कला की जानकारी के लिए खुदाई में मिलने वाले हथियारों तथा सैनिकों के साज–सामान के आधार पर तथ्यों की जानकारी की जाती है।***

कुंजीभूत शब्द– अवलोकन, ऐतिहासिक परिवर्तनों, सैनिक–व्यवस्था, सामान्य इतिहास, ऐतिहासिक जानकारी, मर्यादा।

युद्ध के द्वारा अनेक परिवर्तन आए हैं। ये परिवर्तन युद्ध और उससे उत्पन्न उग्रता के परिणाम हैं, जो अत्यन्त शीघ्रता से फलीभूत होते रहे हैं। इस प्रकार युद्ध उग्रता का भयंकर प्रतीक होते हुए भी ऐतिहासिक घटनाक्रम को तीव्र गति प्रदान करता है। विशाल साम्राज्यों के उत्थान पतन अनेक राजवंशों के उद्भव और ह्रास जैसी महत्वपूर्ण घटनाएं युद्ध के सहज परिणाम हैं। किसी भी युद्ध में दो पक्षों से लड़ने वाली सेनाओं में सैन्य–शक्ति के साथ ही साथ अपनी मर्यादा, धर्म मान एवं परम्परागत अभिमान का बल होता है। ये ऐसी बाते हैं जो किसी भी सैनिक को उत्साहित कर उसे वीरतापूर्ण युद्ध के लिए प्रेरित करती है।

भारतीय इतिहास में उत्थान–पतन के अनेक चिन्ह विद्धमान हैं। आरम्भ से अब तक कई बार आक्रमण हुए, जिनमें यहां संगठन के अभाव और सबल प्रतिरोध के न रहने से आक्रमणकारियों को सफलता मिलती रही है, जबकि ये आक्रमणकारी भारतीयों की तुलना में सभ्यता और संस्कृति में श्रेष्ठ नहीं थे। हमारा इतिहास संघर्षों के साथ ही बहादुरों के विरतापूर्ण कार्यों से भरा पड़ा है। इतिहास में सेनापति की योग्यता, उसका रण–कौशल तथा रणक्षेत्र में सामूहिक वीरता के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध पांच अध्यायों में विभाजित है। प्राचीन भारतीय पुत्र कौशल (आरम्भ से मौर्य काल तक) पर विचार–विमर्श एवं स्थानान्तरण प्रकरण में भूषा पर तथ्यभूत विचार करना परमावश्यक समझा अतः प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में प्रथमतः पृष्ठभूमि के प्रथम प्रकरण में सैनिक शिक्षा और द्वितीय प्रकरण के रूप में सैनिक रणवेश पर प्रकाश डाला गया है। सर्वप्रथम महत्वपूर्ण शिक्षाश्रम की स्थिति और उसके कुलगुरू का वर्णन किया गया है। इन शिक्षाश्रमों में दण्डनीति, वैद्यक, हस्तिशिक्षा, अश्वाशिक्षा तथा धनुर्वेद की शिक्षा दी जाती थी। तत्पश्चात् इन आश्रमों में उच्च ज्ञान दिया जाता था। इन आश्रमों में प्रवेश हेतु विधान, उपनयन, पाठ्य विषय, शुल्क (दक्षिणा) परीक्षा के विधि पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे प्रकरण में शिक्षा ग्रहण करते समय, युद्ध करते समय एवं अत्येष्टि के आधान परिधानों पर विचार किया गया है।

प्रत्येक युद्ध में कुशल प्रशिक्षित और कवचित योद्धा का अपना विशेष महत्व होता है। किन्तु कुशल योद्धा, साज–समान और नेतृत्व ही किसी युद्ध में विजयी होने के लिए रामवाण नहीं है। वरन् वास्तविक रूप से विजय प्राप्त करने के लिए भू–युद्धनीतिक मोर्चाबन्दी का ज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। अतः प्रथम अध्याय में पुरातन भारत में भू–युद्धनीतिक मोर्चाबन्दी पर प्रकाश डाला गया है। इसी अध्याय में भारतवर्ष के नामकरण तथा प्राचीन भौगोलिक स्थिति का सामगिक दृष्टि से विभिन्न कालों में प्राकृतिक मोर्चावन्दी का क्या लाभ प्राप्त था, का आकलन किया गया है। तद्नन्तर इसी अध्याय में कतिपय महाजन पदों के भौगोलिक, राजनैतिक एवं सैनिक दृष्टिकोण से महत्व पर भी विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में प्राचीन भारतीय सैन्य संगठन एवं शस्त्रास्त्रों पर विचार किया गया है। इस अध्याय में पाषाण युग, वैदिक युग, रामायण युग तथा महाभारत युग के सैन्य संगठन, सेनांग, शस्त्रास्त्र, दुर्ग एवं व्यूह रचना सैनिक के शस्त्रास्त्रों के अतिरिक्त सहायक सामग्री के रूप में आवरण (कवच) तथा युद्ध कला पर विस्तृत रूप से प्रस्तुत की गई हैं।

भारतीय सैन्य पद्धति के क्षेत्र में मौर्य काल अपना विशेष स्थान रखता है। अतः तृतीय अध्याय में मौर्य कालीन युद्ध–कला की सम्पूर्ण व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। कौटिल्य से पूर्व सैन्य संगठन के संदर्भ में भिन्न–भिन्न मत प्राप्त होते हैं। यद्यपि कि विभिन्न मतों द्वारा निश्चित सैन्य संगठन के संदर्भ में मत प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है, फिर भी मौर्य काल के पूर्व की स्थिति मगद्य साम्राज्य का विकास, सिकन्दर कालीन भारत एवं भारतीय राज्यों की सैनिक शक्ति का विशद वर्णन

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

इस अध्याय में किया गया है। तद्नन्तर मार्य साम्राज्य की स्थापना, मौर्य सैन्य शक्ति, सेना के भेद, सेनांग, सैन्य पदाधिकारी, सैन्य संगठन, सैनिकों की भर्ती–वेतन एवं भत्ता, प्रशिक्षण, सैनिक उपकरण और शस्त्रास्त्र, कवच (आवरण) और यूद्ध का वर्णन किया गया है।

नगर एक ऐसा विशाल जनसमूह है जिसकी जीविका के प्रधान साधन उद्योग तथा व्यापार हैं और रक्षा का साधन दुर्ग एवं सुरक्षा प्राचीरे हैं। भारत में नगरों का आर्विभाव अत्यन्त प्राचीन है। उत्खनन से प्राप्त ध्वंसावशेष एवं भारत का प्राचीनतम् ग्रन्थ ऋग्वेद इस सत्य पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। शत्रु सेना से स्वरक्षा ही दुर्ग निर्माण का मूल कारण था। प्राचीन ग्रन्थों में दुर्ग की उपयोगिता के बारे में स्पष्ट उल्लेख है। याज्ञवलक्य स्मृति में कहा गया है कि दुर्ग राज्य की सुरक्षा करता है और उसकी प्रजा, सम्पत्ति एवम् मित्रों की भी आश्रय प्रदान करता हैं। वह आक्रमणकारी सेना के लिए एक रूकाउट प्रदान करता है। ठीक यही विचार वृहस्पति ने भी प्रस्तुत किया है । आचार्य मनु ने तो दुर्ग के महत्व को सैनिक तुलना करके भी स्पष्ट कर दिया है। उनका कथन है कि दुर्ग परिखा पर स्थित एक धनुर्धारी एक सौ सैनिकों तथा एक सौ धनुर्धारी सैनिक दस हजार सैनिकों का मुकावला कर सकते हैं। इन विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में अति प्राचीन काल मे ही सुरक्षात्मक साधनों का विकास हो चुका था और भारतवासी दुर्ग के सैनिक महत्व को भलीभांति समझते थे। अतः चुतर्थ अध्याय में नगर रक्षा एवं दुर्ग पर विस्तृत स्थापनाएं प्रस्तुत की गई हैं। इसी अध्याय में नगर रक्षा एवं दुर्ग की प्राचीनता एवं क्रमिक विकास, विविध प्रकार के दुर्ग, प्राचीन दुर्ग–विन्यास आदि पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया गया है।

युद्ध–कला के दो मुख्य रूप हैं– (1) संरचनात्मक (2) कार्यात्मक (प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के शुरू के चार अध्याय युद्ध – कला के संरचनात्मक रूप का वर्णन करते हैं। कार्यात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत, युद्ध–नियम कूट युद्ध के भेद, युद्ध योग्य भूमि, व्यूह रचना, व्यूहों के भेद, संग्राम समिति और विभिन्न सेनांगों के युद्ध के विविभ प्रकार पर प्रकाश पंचम अध्याय में प्राचीन भारतीय संग्राम का सामान्य परिचय के रूप में डाला गया है। जहाँ तक युद्ध–कला के कार्यात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत युद्ध–नियम का प्रश्न है, कौटिल्य (मौर्यकाल) के पूर्व धर्म युद्ध की ही मान्यता थी। किन्तु सिकन्दर के आक्रमण के फलस्वरूप अचानक युद्ध–धर्म की मान्यता को ठेस लगे। इन नियमों को तोड़ने में बहुत कुल साम्राज्य–विस्तार की भावना थी क्योंकि किसी भी तरह से इस काल में युद्ध का उद्देश्य छोटे–छोटे राज्यों को विजित करके एक सार्वभौम अखण्ड साम्राज्य की स्थापना करना था, जिसके लिए युद्ध में धर्म एवं नैतिकता का कोई स्थान नहीं था। यही कारण है कि आचार्य कौटिल्य ने कूट–युद्ध का मान्यता प्रदान की अतः किसी भी तरह से युद्ध में शत्रु को पराजित करना कौटिल्य के कूट–युद्ध का मुख्य आधार बना। विशम परिस्थितियों में नीतियों का निर्धारण अकेला राजा नहीं कर सकता था अतः योग्य अमात्यों एवं मंत्री परिषद् की स्थापना आवश्यक समझी गयी। कौटिल्य ने विदेश–नीति, मंत्रि–परिषद, सेना तथा नागरिकों के सम्बन्ध में जो आचार एवं विचार प्रस्तुत किए, वे सदियों के नियम वन गए जो आज भी अपनी महत्ता की बनाये हुए हैं।

अंतिम अध्याय उपसंहार के अन्तर्गत प्राचीन भारतीय युद्ध कला (आरम्भ से मौर्यकाल तक) एवं युद्धनीतिक विचारों की पूर्ण विवेचना की गई है। यह मान्य होते हुए भी कि संसार की प्राचीन सभ्यता का केन्द्र भारत रहा है, क्रमवद्ध प्रमाणों के अभाव में उनकी ऐतिहासिक परम्परा सुस्थिर नहीं की जा सकी है। यह स्पष्ट है कि मानव–सभ्यता का आरम्भ एकदम अचानक नहीं हुआ होगा। आदिकालीन मानव अपनी असभ्य अवस्था से धीरे–धीरे सभ्यता की ओर बढ़ता गया, लेकिन इसी क्रम में अनेक संघर्षों का सुत्रपात हुआ, जिनमें विजेताओं ने विजितों को सभ्यता को रौंद कर अपने ढंग की सभ्यता का विकास किया।

आदिम अवस्था में मानव पत्थर और हड्डियों के भद्दें हथियारों से शिकार करता था और जंगलों में भटकते हुए अनेक बाधाओं के बीच कंदूमल और कच्चें मांस खाकर जीवित रहता था। इसके प्रमाण भारत के अनेक भागों में मिलते हैं। पत्थर के बेढंगें औजारों के इस्तेमाल के कारण इस प्रागैतिहासिक समय के आरम्भ को पाषाण युग कहा जाता है। बहुत समय बीतने पर औंजारों की शक्ल में सुधार हुआ और कांसे के हथियार बनने लगे। इन युगों का परिमाण हजारों वर्ष का है।

प्रागैतिहासिक संस्कृति का विकास कालका के से सिंधु नदी की घाटी में हुआ। उस विकसित सभ्यता के ध्वंसावशेष पश्चिम पंजाब के मोंटगोमरी जिले के हड़प्पा और सिंध के मोहनजोदड़ो में प्राप्त हुए हैं। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में लगभग 350 मील की दूरी है। फिर भी वहाँ प्राप्त पुराने ध्वंसावशेषों में काफी कहत्व है। इससे प्रमाणित होता है कि इतनी दूरी तक एक ही प्रकार की सभ्यता का विस्तार था। अनेक प्रमाणों के आधार पर इतिहासकारों ने यह अनुमान ने यह अनुमान लगाया है कि सिन्धु सभ्यता का समय ईसापूर्व लगभग तीन हजार वर्षों का है। इस प्रकार यह सभ्यता आज से पांच हजार वर्षों से भी पहले विद्यवान थी। नगरों के ध्वंसावशेषों में जहाँ चौड़ी, सड़कें, नालियां ईंट की चौड़ी दीवारें, ताम्रपत्र, सिक्के तथा सोने चांदी के जेवर मिले हैं वहीं लोहे की कोई चीज नहीं मिलती है। भाले, कटार, एवं चाकू आदि काटने के औंजार तांबे के बने हैं। औजारों के लिए कांसे का प्रयोग खूब होता था। वहाँ प्राप्त ताम्रपत्रों से यह भी पता चलता है कि चौकीदारी और नगर रक्षा के लिए सिपाही होते थे, जो धातु की बनी मजबूत टोपियां पहनते थे। सैन्य संगठन और युद्ध के प्रमाण चिन्ह नहीं के

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

बराबर हैं। किन्तु दुर्गों के निर्माण एवं सुरक्षा व्यवस्था को देखने से यही अनुमानित होता है कि यद्यपि कि इस काल के शस्त्रास्त्र अत्यन्त निम्न श्रेणी के थे, फिर भी निश्चित रूप से अविच्छिन्न सुरक्षा व्यवस्था हेतु स्थायी सैन्य संगठन था।

प्रश्न यह सहज ही उठता है कि सिंधु–घाटी में पनपी इस उन्नत सभ्यता का विनाश कैसे हुआ। सम्भवतः 25वीं सदी ईसा पूर्व में इस सभ्यता का अंत हो गया। ऐसा अनुमान किया गया था कि भूकम्प एवं बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं के कारण यह सभ्यता नष्ट हो गयी होगी हालांकि इन अनुमानों में कुछ न कुछ तथ्य अवश्य है, किन्तु सिन्धुवासियों के पतन में मुख्य कारण आर्यों के साथ हुए युद्ध हैं। आर्य लोहा और घोड़े के उपयोग को जानते थे। वे युद्ध में घोड़े पर चढ़कर तलवार से तेजगति से समर–कौशल दिखाने में समर्थ थे। आर्य रण–कौशल में सिद्धहस्थ थे। ऐसा जान पड़ता है कि शांतिमय जीवन व्यतीत करने वाली सिंधुवासी विलासप्रिय होने से युद्ध के प्रति उदासीन हो गए थे।

इस प्रकार सिंधु–घाटी में विकसित होने वाली संसार की प्राचीनतम् सभ्यता सैन्य–उपेक्षा से उत्पन्न हुई अपनी ही दुर्बलता का शिकार बन गई फलतः उसे आर्यों द्वारा पराजित होना पड़ा।

आर्यों की प्राचीन स्थिति का वानुस्थिति ऋुतियों में मिलता है। जिन्हें आदिग्रन्थ या वेद कहते हैं। वेदों में जहां तहां आर्य विवरण से यह साफ झलकता है कि अनार्यों को अपनी धन और धरती के लिए तथा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आर्यों से घमासान युद्ध करना पड़ा। अनार्य एक साथ मिलकर हमलावरों का मुकावला नहीं कर पाते थे। फलस्वरूप अनार्य समूहों को एक–एक कर आर्यजनों ने पराजित कर दिया। ऐसा जान पड़ता है कि आर्यों को बहुत दिन अनार्यों के साथ संघर्षरत रहना पड़ा इसके फलस्वरूप आर्यों के एक बड़े समूह हो बराबर समर–क्षेत्र में रहना पड़ता था। अतः जिस प्रकार धार्मिक आवश्यकता है ब्राह्मण वर्ग को उत्पत्ति हुई उसी प्रकार सैनिक आवश्यकताओं के कारण क्षत्रिय वर्ग बना।

अनार्यों के अलावा आर्यजन आपस में भी संघर्ष करते थे। वाद में ऐसे संघर्ष निरंतर चलते रहे। पहले युद्धों में समूह के एक लोग मैदान में उतर जाते थे। ऋग्वेद में कई स्थलों पर उल्लेख किया गया है– 'उषा इस तरह आती है जैसे लड़ाई के लिए तैयार जनता' वाद में ऐसा अनुभव किया गया कि सारी जनता के लिए बार–बार युद्ध भूमि में उतरना समाज के लिए हितकर नहीं अतः जीवन की व्यवस्थित रूप से चलाते रहने के लिए जरूरी हो गया कि कुछ लोग सैनिक–सेवा में अपना जीवन लगा दें। इस तरह धीरे–धीरे सुगठित सेना की ओर लोग उन्मुख होते गए। सैनिक धर्म ग्रहण करने वाले लोग वाद में लड़ाई और उससे संबंधित कामों में हो अपने को सीमित रखने लगे। इन सैनिकों के लड़के भी अपनी कुल परम्पर के अनुसार सेना का ही काम अंगीकार करने लगे। इस प्रकार आर्य समूहों में एक सैनिक वर्ग का विकार होता गया। सैन्य बल रहने के कारण राजनैतिक और सामाजिक प्रभुता भी क्षत्रिय वर्ग को मिली।

वैदिक काल में आर्यों के बढ़ते हुए आपसी संघर्ष के कारण सेना का भी एक स्वरूप विकसित हुआ जिसमें पैदल सैनिक घुड़सवार और रथी होते थे। सैनिक कवच और लोहे या ताबे का सिरस्त्राण (टोप) पहनते थे। ये रणक्षेत्र में धनुष और वाण–जिसकी नोंक लोहे और तांबे की होती थी, तलवार और माले तथा पत्थर के वने शस्त्र–शस्त्रों से लड़ते थे। रथों को घोड़े और घोड़ियां खींचते थे, जिन्हें सारथी रस्सी और चावुक के द्वारा नियंत्रित करता था। शत्रुओं से बचाव के लिए दुर्गों का निर्माण किया जाता था। दुर्ग भवन के लिए काठ और लोहे के यंत्र बनाए जाते थे। दुर्गों को तोड़ने, उनपर घेरा डालने तथा आग लगाकर उन्हें नष्ट किए जाने की कला इस काल में ही विकसित हो गयी थी।

रामायण में जिन राजनैतिक और सामरिक परिस्थितियों का पता लगता है, वह बहुत हदतक दूसरे महाकाव्य महाभारत में भी विद्यमान है। रामायण में दशरथ के पुत्र राजा रामचन्द्र के द्वासरा राक्षसों के राजा रावण पर आक्रमण तथा उसके बध को कथा का विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह युद्ध आर्य नेता राम और अनार्य नेता रावण के बीच समझा जाता है, जिसे राम की अधीनता में वानर और रावण के अधीन राक्षसों के मध्य के युद्ध को काव्यात्मक रूप दिया गया। अनुमान है कि वानर वास्तव में वानर न होकर एक जाति विशेष थे।

रामायण युग में धनुष–वाण का सामान्य रूप में उपयोग होता था। इसके अलावा गदा का भी प्रयोग होता था। दुर्ग पद्धति वाले युद्धों का आरम्भ हो चुका था। लंका में रावण के दुर्ग को भेदने तथा आग लगाने का जिक्र है। युद्ध में गदा, शिला, शंकु आदि के साथ सेंग और फेंक कर पार करने वाले गोले, मूसल और जलती लकड़ियों से भी लड़ाई का प्रसंगानुसार विवरण है। सैन्य संचालन, युद्ध–यात्रा–विधि, व्यूह रचना, सुदृढ़ संगठन के प्रमाण उपलब्ध है। पुष्पक विमान और आकाश मार्ग का भी जिक्र है। रामायण युग में समृद्ध नॉ–शक्ति भी थी जो मल्लाहों से शासित थी।

प्राचीन भारत का दूसरा महाकाव्य महाभारत है। महाभारत का युद्ध तथा इसकी कथा का केन्द्र स्थान मध्य देश (उत्तरी भारत) का पश्चिमी भाग है। जहाँ उसकी राजधानी हस्तिनापुर स्थित थी। लेकिन दोनों दलों (कौरवों एवं पाण्डवों) को सहायता देने के लिए आए अनेक राजाओं तथा उनके सैनिक–समूहों से पूरे भारत के युद्ध–कला का परिचय मिल जाता है। महाभारत में कई प्रसंगों में उस समय की रणनीति और सिद्धान्तों का पता चलता है। शान्ति पर्व में धर्मनिष्ठ भीष्म पितामह ने

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

कहा है कि शत्रु सेना और उसकी प्रजा में फूट फैलानी चाहिए, शत्रुओं को लोभ और विश्वास दिखाकर नाश करना चाहिए, किन्तु फिर भी उस समय कुछ ऐसे युद्ध नियम थे, जिनका बड़ी कठोरता से पालन किया जाता था, जो महाभारत काल की सामरिक अनुशासन का परिचायक है।

उस समय दो प्रकार के युद्ध होते थे– (1) प्रकाश युद्ध और (2) कूट युद्ध। महाभारत में दोनों प्रकार के युद्ध हुए हैं। प्रकाश युद्ध सत्य एवं धार्मिक सिद्धान्त पर आधारित थे और कूट युद्ध का उद्देश्य छल–बल से भौतिक साधन–संमत्ति को प्राप्ति है। प्रकाश–युद्ध ही प्रशस्त था और कुट–युद्ध को निन्दा को गई है। इसका मूल कारण यही है कि तब युद्ध के साधन और विधियां निकृष्ट नहीं थीं। कटीले तारों और विषैले हथियारों का प्रयोग नहीं होता था। युद्ध के समय भी रण–क्षेत्र की सीमा के बाहर किसी प्रकार की वरवादी नहीं की जाती थी। सूर्यास्त के बाद युद्ध का निषेध था। युद्ध क्षेत्र में घमासान लड़ाई होते रहने पर भी गावों की जनता सामान्य जीवन व्यतीत करती थी। राज्य के खजाने तथा दुर्ग के भण्डार की ही लूट की जाती थी। सामान्य नागरिकों की सम्पत्ति को छूने की भी आज्ञा नहीं थी।

इतना होते हुए भी महाभारत में ऐसे कई प्रसंग आते हैं जो इन नियमों के अपवाद स्वरूप हैं और जिनमें नीति की तिलांजलि देकर छल–प्रपंच से काम लिया गया है। श्रीकृष्ण की सहायता से अर्जुन द्वारा महारथी कर्ण का वध तथा कौरवों द्वारा चक्रव्यूह में घियरे निहत्थे अभिमन्यु का बध ऐसे हो उदाहरण है।

महाभारत मे इन युद्धों का विवरण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय सैन्य संगठन और सैन्य–परिचालन के विद्या में काफी विकार हो चुका था। हालांकि कई अस्त्रों के प्रभाव के बारे में विवाद है फिर भी इस समय कई प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों के होने की बात जाहित होती है। एक सामान्य सैनिक के पास लड़ने के लिए धनुष वाण होता था। बड़े योद्धा रथों पर होते थे, जिनके पास धनुष–वाण, लोहे के तेज भाले तथा 'शक्ति' नामक उड़ने वाले वाण होते थे। युद्ध में घोड़े और हाथियों का प्रयोग होता था। इस काल के लोगों को युद्ध भूमि में सैन्य–संरचना और संचालन का महत्व मालूम हो गया था।

महाकाव्य काल के बाद भारत वर्ष में सैन्य प्रगति अवरूद्ध हो गई। ईसा से लगभग 500 वर्ष पूर्व भारत में जैनधर्म और वौद्य धर्म का उदय हुआ। यह संयोग को ही बात हैं कि इन दोनों धर्मों के प्रवर्तक क्षत्रिय कुल के युवराज रहे। महावीर के समय से जैन सिद्धान्तों की अधिक मान्यता मिली। उसी समय सिद्धार्थ गौतम ने बौद्ध धर्म का उपदेश दिया। ऐसे वातावरण में एक और ब्राह्मणवादी वैदिक धर्म और दूसरी ओर जैन एवं बौद्ध धर्मों के मतभेदों के कारण आन्तरिक फूट का आरम्भ हुआ। युद्ध एवं महावीर के अहिंसावादी सिद्धान्तों ने आर्यों की परम्परागत वीरोंचित सैन्य भावना को दवा दिया। देश में शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता के अभाव के कारण विघटनकारी तत्वों को बल मिला और देश के अनेक छोटे–छोटे खण्ड राज्य आपस में शत्रुता रखने लगे।

ऐसी स्थिति में जबकि भारत में आन्तरिक फूट की प्रवृत्ति फैल रही थी, देश छोटे–छोटे गणतन्त्रों में विभाजित था और लोग युद्ध और सैन्य कौशल के प्रति उदासीन होते जा रहे थे, ईसा से 326वर्ष पहले यूनानियों ने सिकन्दर की अधीनता में भारत पर आक्रमण किया। सिकन्दर अपने युग का सबसे अधिक प्रतिभा सम्पन्न सेनानी था विषम परिस्थितियों लड़नें के साथ ही सिकन्दर में अपनी ऐसी सैनिक प्रतिभा भी थी, जिसने उसे अपने समय का महानतम योद्धा बना दिया। उसकी सेना की सभी शाखाओं में पूर्ण सहयोग था, जिससे रणक्षेत्र में उसकी विजय निश्चित प्रतीत होती थी।

भारत में प्रवेश से पहले सिकन्दर ने फारस के शक्तिशाली सम्राट दारूस (दारा) को अरवेला में युद्ध में पराजित किया था। फारसी साम्राज्य पर सिकन्दर का आक्रमण 334ईसा पूर्व में प्रारम्भ हुआ था, यह फारसी साम्राज्य पोरस का मित्र था । इस युद्ध में रथ और हाथियों का प्रयोग यूनानी धर्नुधरों और घुडसवारों के सामने बेकार साबित हुआ। रथ और हाथियों की असफलता और इन बड़े सम्राटों की पराजय को खबर भी भारतीय शासकों को मिल गयी होगी, तो भी उन्होंने उसकी कोई परवाह न की और अपनी परम्परागत युद्धकला में कोई सुधार नहीं लाया। संभवतः भारतीयों को अपने रथों, छोटे कद के घोड़ो और भारी भरकस हाथियों पर अटूट भरोसा था।

भारतीय सेना का सबसे महत्वपूर्ण अंग रथ सेना थी। इस काल के रथ चार घोड़ो द्वारा खींचा जाता था। रथ पर छः व्यक्ति रहते थे, जिनमें दोनों तरफ एक–एक ढाल वाहक और दो भालायुक्त रथ चालक रहते थे। इन रथों को गति के संबंध में यदुनाथ सरकार के विचार उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि –रथ एक घोड़े वाले इक्कों या दो घोड़े वाले तांगो के समान तेज नहीं चल सकता था। इक्के तथा तांगों में दो चक्के होते हैं और वे हल्के भी होते है। भारतीय सैनिकों को अपनी घुड़सवार सेना पर काफी भरोसा था, क्योंकि तुलनात्मक रूप में सेना के अन्य पक्षों से इसमें अधिक गतिशीलता थी। किन्तु यही सबसे कमजोर अंग था। भारतीय घुड़सववार सैनिक फेंके जाने वाले दो भाले (लम्बाई नौ फुट) और एक ढाल लेकर चलते थे। इस प्रकार सवार की सुरक्षा के लिए तो कम से कम एक ढाल थी, पर घोड़े की शत्रुओं की मार से सुरक्षित रखने के लिए कोई कवच नहीं था। भारतीय सेना में विशालकाय पशु हाथी का रखा जाना एक अपनी विशेषता थी। प्रत्येक हाथी

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

पर तीन योद्धा और एक महावत होता था । रण भूमि में उपयोग के लिए विशेष प्रकार के हांदे वनाए जाते थे, जिन्हें हाथियों की पीठ पर कसकर बांध दिया जाता था। उस समय के सेनापति या नरेश सजाए गए विशाल हाभी पर बैठकर रण–भूमि में आना ज्यादा पसन्द करते थे। भारतीय पैदल सेना विभिन्न प्रकार से सज्जित होती थी। पैदल सेना का मुख्य हथियार धनुष था कुछ सिपाही भाले रखते थे, लेकिन पोरस की सेना के पैदल सिपाहियों में तलवार ढाल की संख्या अधिक थी।

भारतीय सेना में पत्थर या तीर वर्दी फेंकने वाली न तो कोई मशीन थी और न ही उनके पास 24 फुट सरिसा सामान नोंकदार भालों वाला कोई दल था। भारत से लौटने के पूर्व सिकन्दर ने यहाँ के सोमांत प्रदेश (पंजाब में जीते गए) इलाकों को, शासन के लिए, अधीनता स्वीकार करने वाले हिन्दू राजाओं तथा युनानी क्षत्रपों के मातहत रख दिया था लेकिन यह व्यवस्था सिकन्दर के प्रस्थान के वाद ज्यादा दिनों तक नहीं टिक पाई। उसी समय मगध का एक निर्वासित युवक चन्द्रगुप्त मौर्य युनानी आक्रमण और सिकन्दर के समरतंत्र तथा नीति का गहराई से अध्ययन कर रहा था। वाद में इसी चन्द्रगुप्त ने अपने ब्राह्मण गुरू विष्णुगुप्त चाणक्य (कौटिल्य) के निर्देशन में मगध सम्राट नन्द को अपदस्थ किया और पालिपुत्र की गद्दी पर विराजमान हुआ। इतिहासकार जस्टिन ने चन्द्रगुप्त के उत्थान की चर्चा इस प्रकार की है– 'सिकन्दर महान की मृत्यु के वाद भारत ने एक वार पुनः करवट बदली, गुलामी का जुंआ उतार फेंका तथा यूनानी गवर्नरों की हत्या कर डाली, इस स्वतंत्रता संग्राम का सुत्रधार राष्ट्रीकोप्टोरा ही था।

अपनी सुसंगठित और प्रशिक्षित सेना के साथ चन्द्रगुप्त ने उत्तर की ओर कूल किया और शेष यूनानी छात्रों को पराजित कर भारतीय सीमा प्रदेशों को सुरक्षित बना दिया। अन्तिम यूनानी छात्रा सेनापति सेल्यूकस ने अनेक उपचार के साथ अपनी बेटी के विवाह के द्वारा चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली। यह घटना चन्द्रगुप्त के गुरू कौटिल्य की कूटनीति और सूझ–बूझ का ही परिचायक है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में किए गए उल्लेखों तथा यूनानी द्रुत मेगास्थनीय के वितरणों से चन्द्रगुप्त की सेना और उसके समरतन्त्र के विषय में काफी बातों को जानकारी होती है। परम्परागत रूप में उसकी सेना के मुख्य चार अंग थे। 1– रथ सेना, 2–हाथी सेना, 3– घुडसवार सेना, 4– पैदल सेना। इसके अलावा दो और अंग थे, जिन्हें उस समय सेना का अंग माना जा चुका था। वे अंग 5– परिवहन तथा रसद एवं अन्य सेवाओं के लिए श्रमिक दल, 6– नौ सेना एवं गुप्तचर विभाग।

इन विभागों के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त की सेना में ऊटों का रिसाला तथा ..... सैनिकों तथा जानवरों के लिए चिकित्सकों का दल भी सम्मिलित था।

इस काल के सेनांगों में रथ सेना सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। युद्ध–प्रशासन में एक अलग ऐसा विभाग होता था, जिसका काम सेना के एक अंग के रूप में रथों की बराबर ठीक–ठाक करके तैयार रखना होता था। इस विभाग के अध्यक्ष को रक्षाध्यक्ष कहते थे, जिनके कामों का वर्णन कौटिल्य ने विस्तारपूर्वक दिया है। उसका मुख्य काम विभिन्न प्रकार के रथों का, प्रमाणिक आकार के अनुसार, निर्माण करवाना था तथा रथ पर लड़ने वाले सैनिकों की उचित प्रशिक्षण देकर उनके सामरिक क्षमता को उचित स्तर पर बना रखना था।

मौर्य काल में गज सेना युद्ध में विजय अथवा पराजय का निर्णय करते थे। हाथियों का प्रयोग विध्वंसात्मक कार्यों के अतिरिक्त शत्रु के मोर्चे को तोड़ने के लिए किया जाता था। चन्द्रगुप्त की सेना के एक अंग के रूप में हाथियों के प्रशिक्षण तथा उनकी क्षमता को देखभाल का काम युद्ध प्रशासन की एक विशेष शाखा के हाथ में था। इस विभाग का प्रधान हस्त्याध्यक्ष नामक अधिकारी होता था।

घुड़सववार सेना के विषय में कौटिल्य ने अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है। इसे सेना की निगरानी के लिए अनिवार्य अंग माना गया है। सेना की दिशा को मोड़ने और शत्रु का पीछा करने आदि के कामों में घुड़सवार दस्तों का प्रयोग होता था। सेना में घोड़ों का इतना महत्वपूर्ण स्थान था कि सेना में घोड़ों को भर्ती करने तथा प्रशिक्षण के लिए सरकार का एक अलग विभाग था। उस विभाग के अध्यक्ष की उत्तम घोड़ों को सूची रखनी पड़ती थी। इस विभाग के अध्यक्ष को अश्वाध्यक्ष कहते थे। उसके लिए अस्तवलों का विशेष प्रबन्ध था, जहाँ उसे प्रशिक्षित करने तथा पशु–चिकित्सकों द्वारा उनके रोगों की चिकित्सा की व्यवस्था भी थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में पैदल सेना का विशेष महत्व था। आचार्य कौटिल्य ने देश के विभिन्न भागों में बसने वाली लडाकू जातियों का जिक्र किया है और उन्हें पैदल सेना में रखे जाने पर बल दिया है। ऐसी जातियों के रूप में आटविक तथा कुछ अन्य जातियों का उल्लेख किया है, जो रणक्षेत्र में पदातिरूप में लड़ना अधिक पसन्द करती हैं।

उपर्युक्त चारों प्रकार के सैन्य दलों को भी कौटिल्य ने विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है। इस प्रकार के विभाजन का उल्लेख कौटिल्य के पूर्व के किसी भी श्रोत से नहीं मिलता है। इन वर्गों की संख्या आधुनिक युग के विद्वान मेजर रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ एवं कैप्टन वनवारी लाल शर्मा, सत्यकेतु वेदालंकार, कैप्टेन वी0एन0 मालीवाल आदि ने छः बताई है, जो निम्नवत् है–

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

1–मौल वल, 2–मृतक बल, 3–श्रेणी बल, 4–मित्र बल, 5–अमित्र बल, 6–अटवोवल। इन छः प्रकार के वर्गों का उल्लेख भी कौटिल्य ने किया है। इन विद्वानों ने और किसी वर्ग का उल्लेख नहीं किया है। मेरे विचार के कौटिल्य ने सैन्य बलों के छः नहीं सात वर्ग बताये हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में स्पष्ट रूप से सातवें वर्ग का नाम 'ओत्साहिक' बताया है।

इस चतुरंग बल सेना के विवरण के अलावा परिवहन और रसद तथा सहायक दल भी थे। स्कन्धावार (छावनी) के निर्माण में वर्धकि (कारीगर) मौहूर्तिक (ज्योतिषी) रहते थे। चिकित्सक तथा उनके सहायक कुरूप तथा भोजन बनाने वाली स्त्रियां भी सेना के साथ रहते थे। स्काउटों का कार्य जैसे शिविरों, सड़कों, नदियों तथा कुओं की खुदाई, नदियों के पाटों का निरीक्षण तथा उन्हें उपयोग के लिए तैयार करना, पायल सैनिकों को उनके शस्त्रास्त्रों और कवच सहित रणक्षेत्र से हटाकर ले जाना– ये एवं कार्य श्रमिकों के एक विशेष समूह द्वारा सम्पन्न होता था।

मौर्यकाल में नौ सेना और सुगठित गुप्तचर विभाग का होना उल्लेखनीय बात है। नौ सेना विभाग नवाध्यक्ष नामक एक वरिष्ठ अधिकारी के अधीन थी, जिसे युद्ध एवं परिवहन से संबंधित सभी प्रकार के जहाजों की समस्या पर विचार करना पड़ता था युद्ध में जल यानों के प्रयोग का उल्लेख सर्वप्रथम सिकन्दर के आक्रमण में मिलता है, जिसने अपने बेड़ें की सहायता से झेलम नदी को पार किया था। चन्द्रगुप्त के समय में बड़ें जल–यानों के निर्माण का एकाधिकार राज्य का था ।

नौ–सेना विभाग सागर में तथा नदी तटों पर पहरे का प्रबन्ध करता था। शत्रु–देश के जहाजों का ध्यान रखा जाता था और मौका मिलने पर उसे जल में ही डुबाने के प्रयत्न किए जाते थे। नवाध्यक्ष समुद्र तटों और नदी–घाटी पर वसूल किए जाने वाले कर की व्यवस्था करता था। जल मार्गों के द्वारा सेना के लिए हथियार तथा सामान ले जाने के लिए नावों का उपयोग किया जाता था।

मौर्य राज्य का गुप्तचर विभाग भी बड़ी योग्यता से कार्य करता था। यह विभाग महामंत्री के निर्देशन में सीधा सम्राट के अधीन रखा गया था। देश के आन्तरिक भागों के साथ ही पड़ोसी राज्यों में भी चतुर गुप्तचरों का जाल विछा था जो हर समय की राजनैतिक और सामाजिक गतिविधि का समाचार लाया करते थे। रणक्षेत्र में शत्रु की स्थित, वहाँ की भू–रचना, जन वातावरण आदि का हाल इन गुप्तचरों के द्वारा सेना के प्रधान अधिकारियों को बराबर मिलता रहता था।

चन्द्रगुप्त मौर्य की इस महान और सुसंगठित सेना ने आगे आने वाली दो शताब्दियों तक भारत को एक शक्ति सुत्र में बांध कर सुरक्षित रखा। आगे चलकर इसी शक्तिशाली सेना द्वारा मौर्यां का साम्राज्य विस्तार हुआ, जो पूरब में मगध से लेकर पश्चिम में फारस की सीमा तक था तथा दक्षिण में लंका तक फैला था। इसी मौर्य–वंश में अशोक महान् हुआ, जिसने अपनी अलौकिक प्रतिभा और दिव्य पराक्रम के द्वारा शक्ति राज्य को धर्म राज्य से बदल दिया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आत्मदारार्थ लोकानां सच्चितानां तु गुप्तये। –याज्ञवलक्य स्मृति, 1 /321.
2. तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकीशात्मगुप्तये। –वृहस्पति, 1/1/28.
3. एकः शतं योधगति प्रकाररथां धनुर्धरः।
   शतं दश सहस्त्राणि तस्माद दुर्ग विधोयते।।
   – मनु स्मृति, 7/74, उद्वरति– 'भारतीय सैन्य विज्ञान' कुलश्रेष्ठ एवं शर्मा, पृ0 176.
4. मार्शल ने इस सभ्यता तिथि को 3250 ई0पू0 से 2750 ई0पू0 तक निर्धारित किया है। (मोहन जोदड़ो एण्ड दो झण्डस सिविलाइजेशन, मार्शल, पृष्ठ 106) एवं सर मार्टामर ह्वीलर ने आधुनिक उत्खनन के आधार पर 2500 ई0पू0 से 1500 ई0पू0 के मध्य माना है। (दो इण्डरा सिविलाइजेशन, मार्टीमर ह्वोलर, पृष्ठ 36).
5. मोहन जोदड़ो एण्ड दो इण्डरा सिविलाइजेशन, मार्शल पृ0–464.
6. ऐरिण्ट इण्डियन वारफेयर विद् कौशल रिफरेन्सेज टु दी वैदिक पीरियड, सर्वदमन सिंह, पृष्ठ–123.
7. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड सर्ग 75 श्लोक 3.
8. देखें, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय 2 (ग)
9. फिदौसी रचित 'शाहनामा' में दारूर (दारा) ने पुरू से सहयता मांगा था (मैकेन संपादित, भाग 3, पृष्ठ–1279) द्वारा की पुरू की जाति का कहा गया है, जो दारा और पुरू के परस्पर राजनैतिक सम्बन्ध का द्योतक है।
10. भारत का सैन्य इतिहास, यदुनाथ सरकार (अनुवादक सुशील कुमार त्रिवेदी) पृष्ठ–14.
11. मैकस्थनीज– कोटेड वाई एसियन, पृ0 419, उद्धरित, वही, पृ0 16।
12. वही, पृ0 16.
13. वही, पृष्ठ– 26.

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

14. देखिये, वाटसन का अनुवाद, पृ0 142, उद्धरित–प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, हेमचन्द्र राय चौधरी, पृ0 195.
15. योद्धा चन्द्रगुप्त मौर्य का .....
16. देखें, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय 5(च) का खण्ड–III।
17. कौटलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण 2, अध्याय 31, देखें– प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय 5(च) का खण्ड–4।
18. कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधिरका 2, अध्याय 30, देखें–वही, अध्याय 5 (ग) का खपड 2।
19. मोल भृतक श्रेणी मित्रामित्राटवा वलानां समुद्दानकलाः।
(कौटलीय अर्थशास्त्र, अधिकरण 9, अध्याय 2, श्लोक 1)
20. सैन्यमनेकमनेक जातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोयार्थ यदुत्तिष्ठति तदोत्साहिकम्– कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण 9, अध्याय 2, श्लोक 26। अर्थात् 'जो सेना एक मुख्य नेता से रहित, भिन्न–भिन्न देशों में रहने वाली, राजा से स्वीकार की हुई अथवा न स्वीकार की हुई, केवल दूसरे देशों को लूटने के लिए उठ खड़ी होती है, उसी सेना का नाम औत्साहिक है।
21. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण 10, अध्याय 1, श्लोक 1.
22. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण 10, अध्याय 3, श्लोक 62.
23. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण 2, अध्याय 28, श्लोक 1.
24. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण 2, अध्याय 28, श्लोक 2 से 26 तक।
25. यात्रावेतनं राजनोमिः संपतन्तः।
(कोटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण 2, अध्याय 28, श्लोक 5).
26. कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण 2, अध्याय 28, श्लोक 21.

*****